ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 181-183

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

जनसंख्या, संसाधन और विकास

डॉ0 भोलेन्द्र प्रताप सिंह

असि0 प्रोफेसर, भूगोल विभाग, पी0जी0 कालेज, गाजीपुर (उ0प्र0), भारत

Received-19.06.2022, Revised-23.06.2022, Accepted-28.06.2022 E-mail: bholendrapratpbps1976@gmail.com

सारांशः– ***मनुष्य के विभिन्न उद्देश्यों, आवश्यकताओं की पूर्ति तथा समस्याओं का समाधान करने या समाधान में योगदान देने वाले स्रोत को संसाधन की संज्ञा दी जाती है। किसी वस्तु या तत्व की संसाधनता मनुष्य की आवश्यकतापूर्ति की क्षमता में निहित होती है। अतः कोई वस्तु या तत्व संसाधन की संज्ञा तभी प्राप्त करता है, जब किसी देश व काल के मनुष्य में उक्त वस्तु या तत्व से आवश्यकता पूर्ति की बौद्धिक क्षमता प्राप्त हो। मानव का ज्ञान ही सर्वप्रमुख संसाधन है, क्योंकि उसके ज्ञान, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक संगठन के कारण ही प्राकृतिक तत्व संसाधन का रूप ग्रहण करते हैं। अतः मनुष्य स्वयं संसाधन एवं संसाधनकर्ता भी है।***

कुंजीभूत शब्द– समाधान, योगदान, संसाधन, संसाधनता, बौद्धिक क्षमता, सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक संगठन।

किसी देश की जनसंख्या की मात्रात्मक व गुणात्मक संरचना (घनत्व, जन्म–दर, मृत्यु–दर आदि) तथा आर्थिक विकास सूचकांकों (राष्ट्रीय आय लगान, मजदूरी, रोजगार आदि) में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। इस अर्न्तसम्बन्ध को प्रो0 रिचर्डगिल ने इस प्रकार व्यक्त किया है, ''आर्थिक विकास एक यांत्रिक प्रक्रिया के साथ मानवीय उपक्रम भी है।'' मार्क्स ने कहा कि, ''मनुष्य ही समस्त उत्पादन का कारण है।'' प्रो0 कार्बर का मत है कि, ''समृद्ध वातावरण के बीच भी समुदाय एवं राष्ट्र निर्धन रहे हैं। प्रचुर व उत्तम कोटि के प्राकृतिक संसाधनों के होते हुए भी मानवीय संसाधन की न्यूनता के कारण ही राष्ट्र पतनोन्मुख हो गये हैं।'' इसी प्रकार का विचार प्रो0 ए0 मुखर्जी ने भी व्यक्त करते हुए कहा है कि ''किसी भी राष्ट्र की उन्नति वहॉ के मानवीय–संसाधन सबसे बड़ी पूँजी होती है, परन्तु उन संसाधनों के समुचित उपयोग न होने, नये रोजगार के अवसर प्रदान न करने आदि ने राष्ट्र की जनसंख्या भारस्वरूप बन जाती है। राष्ट्र के लिए अपनाई गई नीति में मानव–शक्ति का आयोजन एक मूल तत्व है।

जनसंख्या और संसाधन– किसी क्षेत्र अथवा देश में जनसंख्या तथा संसाधनों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। यह अन्तर्सम्बन्ध वहॉ की खाद्य–सामग्री की उत्पादन मात्रा एवं आपूर्ति तथा लोगों के जीवन–स्तर में परिलक्षित होता है। 20वीं शताब्दी में विश्व के विस्तृत क्षेत्र में जनसंख्या की तुलना में खाद्यान्नों का उत्पादन कम होने से खाद्य समस्या उत्पन्न हो गई। विश्व के जनसंख्या वितरण एवं संसाधन की उपलब्धता में प्राप्त व्यापक असंतुलन के कारण आर्थिक विकास में भिन्नता पाई जाती है। अतएव आज के ऐसे युग में जनसंख्या एवं संसाधनों के अन्तर्सम्बन्ध तथा उसके संतुलन का विश्लेषण महत्वपूर्ण हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय–स्तर पर संसाधन उपयोग प्रतिरूप में भिन्नता पाई जाती है। किसी देश के सम्पूर्ण संसाधन आधार का अधिकतम उपयोग होने पर भी जनंसख्या का जीवन–स्तर ऊँचा न हो तथा उत्तरोत्तर प्रति व्यक्ति उत्पादन तथा उपभोग कम होता जाय, तो वहॉ जनाधिक्य की स्थति पाई जाती है। जहॉ संसाधनों के अधिक उपयोग होने तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन व उपभोग की मात्रा बढ़ाने की सम्भावना पाई जाती हो, तो वहॉ जनसंख्या अनातिरेक तथा उपलब्ध संसाधनों का समुचित उपयोग होने से लोगों का जीवन–स्तर उच्चतम हो तो आदर्शतम जनसंख्या की स्थिति होती है। परन्तु संसाधनों के समुचित उपयोग के मापदण्ड के अभाव में आदर्शतम् स्थिति का निर्धारण कठिन होता है। जनसंख्या का आदर्शतम् स्वरूप जनसंख्या के उस आकार को व्यक्त करता है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति पर्याप्त व शुद्ध भोजन, जल, वायु, ऊर्जा तथा अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त कच्ची सामग्री एवं चिकित्सकीय व मनोरंजन आदि की पूरी सुविधाएँ प्राप्त करता है। इससे मनुष्य का जीवन–स्तर उच्चतम स्तर का हो जाता है। प्रायः जनाधिक्य की स्थिति राष्ट्रीय व प्रादेशिक स्तर पर परिलक्षित होती है। विकसित व विकासशील देशों में, जहॉ जनाधिक्य नहीं है, प्रादेशिक जनाधिक्य दिखाई देता है। ऐसे देशों में जापान, बेल्जियम, इटली, आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड (विकसित देश) तथा इण्डोनेशिया में जावा (विकासशील देश) उदाहरण के रूप में समक्ष है। ग्रामीण क्षेत्र में प्राप्त जनाधिक्य को ग्रामीण जनाधिक्य तथा औद्योगिक क्षेत्र में प्राप्त जनाधिक्य की संज्ञा दी जाती है।

भारत के विशेष संदर्भ में–19वीं शताब्दी में जनसंख्या तथा संसाधनों के बीच संतुलन दिखाई देता था। इसलिए उस समय देश के समक्ष खाद्यान्न समस्या जैसी कोई समस्या नहीं थी। परन्तु 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में देश की जनसंख्या में, उत्पादन की अपेक्षा, अधिक तेजी से वृद्धि हुई है, जिससे जनसंख्या समस्या धीरे–धीरे एक गंभीर रूप ले चुकी है। सन् 1950

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

ई0 के बाद स्वास्थ्य एवं चिकित्सकीय सुविधाओं के विस्तार हो जाने से मृत्यु दर में तो ह्रास हुआ है, परन्तु जन्मदर में अपेक्षित कमी नहीं आई। फलतः जनसंख्या वृद्धि दर खाद्यान्न वृद्धि दर की तुलना में कहीं अधिक रही है, जिससे आज देश जनसंख्या की विस्फोटक स्थिति से गुजर रहा है।

तालिका 1

भारतीय जनसंख्या की प्राकृतिक वृद्धि दर

वर्ष	प्राकृतिक वृद्धि दर	वर्ष	प्राकृतिक वृद्धि दर
1911	+15.73	1951	+51.45
1921	+15.41	1961	+84.22
1931	+17.01	1971	+129.92
1941	+33.66	1981	+186.84

डॉ0 राधा कमल मुखर्जी प्रभृत विद्वानों का कथन है कि "भारत में अधिक मात्रा में खाद्यान्न का आयात, कृषि जोतों का कम होना, भूमि पर कृषकों की संख्या में वृद्धि, लोगों का निम्न जीवन–स्तर यह प्रगट करता है कि यहाँ जनसंख्या एवं संसाधनों के मध्य असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गई है।" बढ़ती हुई जनसंख्या ने देश के ग्रामीण एवं नगरीय अर्थतंत्र को असंतुलित कर दिया है। औसबोर्न का कथन है कि भारत का आन्तरिक शत्रु बढ़ती हुई जनसंख्या है, जिसके लिए भारत की भूमि भोजन नहीं प्रदान कर पाती। इस बढ़ती हुई जनसंख्या पर जब तक नियंत्रण नहीं लगाया जायेगा तब तक भारत माता अपने बच्चों के लिए भोजन जुटा पाने में असमर्थ रहेगी।

सन् 1931 ई0 के बाद से भारत की जनंसख्या एवम् खाद्यान्न के मध्य असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होने लगी। सन् 1937 ई0 में म्यांमार के अलग होने प्रतिवर्ष 10–15 लाख टन चावल की सदैव के लिए कमी हो गई। सन् 1947 ई0 में देश के विभाजन के फलस्वरूप लगभग 82 प्रतिशत, जनसंख्या भारत वर्ष में आई, परन्तु चावल व गेहूँ उत्पादक क्षेत्र क्रमशः 68 प्रतिशत, 65 प्रतिशत ही प्राप्त हुआ है। फलस्वरूप देश में 7.5 प्रतिशत खाद्यान्न की और कमी हो गयी। देश में जनसंख्या की वृद्धि दर (वार्षिक) की अपेक्षा खाद्यान्न उत्पादन में बहुत कम दर से वृद्धि हो रही है।

बी0 राबर्टसन समिति के प्रतिवेदन के अनुसार भारत में खाद्यान्न समस्या का इतिहास 20वीं शताब्दी से प्रारम्भ होता है। सर जानरसेल के अनुसार 1901 से 1925 ई0 तक की अवधि में जनसंख्या में 370 लाख की वृद्धि हुई है, जबकि कृषि भूमि क्षेत्र में केवल 40 लाख एकड़ की ही वृ0 हुई। पी0के0 बत्तल के अनुसार सन् 1913 ई0 से 1935 ई0 के मध्य भारत की जनंसख्या में वार्षिक वृद्धि दर 1 प्रतिशत ही रही, परन्तु इस अवधि में खाद्यान्न उत्पादन में मात्र 0.65 प्रतिशत की ही वृद्धि हुई। योजना आयोग एवं मेहता जॉच समिति के अनुसार "देश की खाद्य समस्या का प्रमुख कारण खाद्यान्न की अपेक्षा जनसंख्या में अत्यधिक तीव्र वृद्धि है। जनंसख्या एवं खाद्यान्न के मध्य असंतुलन को कम करने हेतु विभिनन योजनाकालों में देश को क्रमशः अधिक मात्रा में खाद्यान्न आयात करना पड़ा है, जो निम्नांकित तालिका से स्पष्ट है–

तालिका 2

योजना काल	कुल आयात (करोड़ टन में)	आयात का मूल्य (करोड़ रूपया में)
प्रथम योजना काल	0.88	120
द्वितीय योजना काल	1.93	160
तृतीय योजना काल	3.25	216

जनसंख्या एवं विकास– मानव, विकास प्रकिया का केन्द्र व समस्त विकास योजनाओं एवं रणनीतियों का महत्वपूर्ण वाहक होता है। विकास के संदर्भ में अनेक व परस्पर विरोधाभासी विचार समक्ष आते हैं। प्रायः जनसंख्या के बड़े आकार को लोग विकास में नकारात्मक कारक के रूप में मानते हैं, परन्तु जनसंख्या के गुण व विशेषताओं पर बहुत कुछ निर्भर होता है।

खाद्यान्न उत्पादन की तुलना में जनसंख्या वृद्धि दर अधिक होने पर माल्थस ने भविष्य के प्रति आगाह किया था। इसके साथ ही आज जनसंख्या और खाद्य आपूर्ति के अन्तर्सम्बन्ध का अध्ययन महत्वपूर्ण विषय बन चुका है। वस्तुतः तकनीकी क्रान्तियों के कारण जनसंख्या वृद्धि एवं खाद्यान्न उत्पादन में यह बताना कठिन है कि खाद्यान्न आपूर्ति की दर क्या होगी या उसका उपभोग किस प्रकार बदलेगा। इसके साथ–साथ खाद्य उत्पादन बढ़ाने के लिए भूमि के अति उपयोग या दुरूपयोग से

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- II, Issues-24, YEAR- April-June-2022

पर्यावरण पर भयंकर परिणाम परिलक्षित होते हैं। जनसंख्या व संसाधनों के मध्य संकलन के किसी मूल्यांकन में जनसंख्या वृद्धि महत्वपूर्ण तत्व बन जाता है। किन्तु यह भी सत्य है कि उच्च जन वृद्धि अथवा संसाधनों की कमी ही असंतुलन के लिए उत्तरदायी नहीं है, वरन् प्राविधिक विकास की अवस्था व सामाजिक संरचना तथा वितरण की विशेषताएँ व सरकारी नीतियाँ आदि ऐसे तत्व हैं, जो मानव संसाधनों के अन्तर्सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं।

इस प्रकार किसी क्षेत्र अथवा प्रदेश की जनसंख्या वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों पर ही निर्भर नहीं होती वरन् वह सामाजिक, आर्थिक, प्राविधिक व राजनीतिक दशाओं पर भी निर्भर करती है। इस जटिल अन्तर्सम्बन्ध की व्याख्या के लिए मानव विकास सूचकांक बनाया गया है। मानव विकास मनुष्य की आकांक्षाओं एवं उपलब्ध जीवनायपन की सुविधाओं के स्तर को विस्तृत करने की प्रक्रिया है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम द्वारा प्रस्तावित मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार विकास केवल लोगों की आय और पूँजी का विस्तार नहीं, वरन् यह मानव के कार्यप्रणाली तथा क्षमताओं में उन्नयन की प्रक्रिया है। वस्तुतः विकास की इसी विचारधारा को मानव विकास की संज्ञा दी गई है। सन् 1990 से प्रतिवर्ष संयुक्त राष्ट्र संघ मानव विकास सूचकांक निर्धारित करता है।

निष्कर्ष– मानव संसाधन के विकास में पर्यावरणीय अवनयन भी एक कठिन चुनौती है, क्योंकि विवधि प्रकार के प्रदूषण से मानव–स्वास्थ्य अधिक प्रभावित होने लगा है। विश्व बैंक के एक ऑकलन के अनुसार आने वाले दशकों में मानव स्वास्थ्य पर सभी सरकारों को अपनी आय का एक महत्वपूर्ण अंश खर्च करना पड़ेगा, जिन देशों में पीने के लिए पानी, शिक्षा के लिए विद्यालय और आने–जाने के लिए परिवहन का प्रबन्ध तक नहीं हो सका है, उन्हें मजबूर होकर अपने नागरिकों की स्वास्थ्य रक्षा के लिए धन का प्रबन्ध करना पड़ेगा। विश्वस्तरीय आपदा–प्रबन्धन की आवश्यकता भी एक चुनौती है। गरीब देशों में भूकम्प, बाढ़ और सूखा जैसे प्राकृतिक प्रकोपों के प्रबन्धन की समुचित व्यवस्था अब भी नहीं हो पायी है, जिसके लिए समर्थ राष्ट्रों की उदार पहल आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. काशीनाथ एवं जगदीश सिंह, आर्थिक भूगोल के मूल तत्व, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, 1967, पृष्ठ 171.
2. मुखर्जी, ए0, इकोनामिक रिव्यू, जुलाई 5, 1996, पृष्ठ 15.
3. ओसबर्न, एफ0, अवर प्लन्डरेड प्लेनेट।
4. वोगाट, डब्लू, रोड टू सर्वाइवल, पृष्ठ 227.

*****